ग़रज़े शहादत

उमदतुल उलमा मौलाना सैय्यद कल्बे हुसैन नक़वी साहब ताब सराह

जब हिजरी सन् बदलता है, जब माहे जिलहिज्जह की आख़री तारीख़ में खंजरे ग़म बनकर नया चाँद मोहर्रम की पहली रात में आसमान पर चमकता है, जब हर सच्चे शीआ के घर में मातम की सफ बिछती है, ग़म का लिबास जिस्म पर होता है, हर मर्द औरत पूरी तरह से ग़म की निशानी बन कर अहलेबैते रसूल (स0) की मुहब्बत का मुज़ाहेरा करता है। जन्नत के फिदायी असहाबे हुसैन की तरह मज़लूम पर जान फिदा करने की तमन्ना में बेचैन होने वाले कहीं अलमदारे लश्करे हुसैन की यादगार में अलम नसब करते हैं कहीं जियातरते क़ब्रे हुसैन के मुश्ताक़, बाँस, कागज़, लकड़ी या चाँदी सोने से शबीहे रौज़ा शहीदे कर्बला बना के असल से दूर रह कर भी शबीह को देख कर सवाबे ज़ियारत हासिल करते हैं।

ज़िक्रे हुसैन को हर उस अन्दाज़ में दुनिया के सामने पेश करने की कोशिश करते हैं जो दिलनशीन और नज़रों में समाने वाला हो। दुनिया के हर उस इंसान के लिए जज़्बात को भड़काने वाला हो, जिसके दिल के किसी गोशे में मज़लूम से हमदर्दी की लहरें छुपी हों।

इनही फिक्रों का इज़हार कहीं रौज़ाख़्वानी कहीं किताब ख़्वानी, कहीं वाक़ेआ ख़्वानी और कहीं नस्र ख़्वानी, मरसिया और ग़म की सूरत में ज़ाहिर होता है और अब आख़िर में नसीहत के नाम से बुलन्दी की आख़री मन्ज़िल तक पहुँचता है। मज़कूरा बाला बहुत से अन्दाज़ वह हैं जो अब छूटे हुए हैं और शायद सैकड़ों आदमियों को मालूम भी न होगा कि मज्लिसे ग़म में उनके पेश करने का तरीक़ा क्या था अपनी मालूमात की हद तक मैं यह कहने की जुराअत कर सकता हूँ कि नसीहत का अन्दाज़ आम होने से पहले हर ज़ाकरी का अन्दाज़ सिर्फ फ़ज़ाएल व मसाएबे मासूमीन (अ0) तक मुनहसिर था जिसमें मुनाज़रा की नमकीनी सुनने का शौक़ बढ़ाने के लिए लाज़मी समझी जाती थी।

मगर तक़रीबन एक सदी के अन्दर–अन्दर जब से नसीहत धीरे–धीरे ज़ाकरी के मुख़्तलिफ तरज़े नज़र करने लगा, उस वक़्त से मुख़्तलिफ मौजू हाज़रीने मजलिस की समाअत तक पहुँचने लगे। (मगर कमी के साथ) ज़ियादती ऐसे ही मज़ामीन, लफ़्ज़ी रिआयात, ख़िताबात, शाएराना नुकात की थी और है। जो सलवात के लरज़ते नारों से वाइज़ के कलाम को आम पसन्द होने की सनद दे दें। वाह–वाह के लालच में सुनने वालों को यह भी समझा दिया जाता है कि सिर्फ मुहब्बते आले मोहम्मद (स0) नजात के लिए काफी है। यह भी कह दिया जाता है कि ग़म का एक आँसू तमाम जहन्नम की आग को बुझा देगा।

एक मातम की मज्लिस में बैठ जाना जन्नत का मुस्तहक़ बना देगा मगर यह नहीं बताया जाता कि ''बिशरतिहा व शुरूतिहा'' यह चीज़ें सिर्फ उसी वक़्त जन्नत का परवाना बनती हैं जब इनके साथ ईमान हो, वहदत हो, रिसालत, इमामत, मआद, ख़ुदा की अदालत और तमाम

उसूले दीन के सच्चे दिल से इक़रार के साथ। फ़ुरूए दीन, नमाज़, रोज़ा, हज व ज़कात, ख़ुम्स और हराम व हलाल के अहकाम पर भी अमल हो। नमाज़ के वास्ते सुन्नी व शीआ का इत्तेफाक़ है कि अगर यह इबादत क़बूल न होगी तो हर अच्छा काम रद्द हो जायेगा। रोज़े के वास्ते यह अहमियत है कि मोमिन हो, बड़े से बड़ा अज़ादारे हुसैन (अ0) हो, लेकिन माहे रमज़ान में तीस दिन बिना किसी शरअी उज़्र शरअी हाकिम की तम्बीह के बाद भी रोज़ा न रखे तो अगर हुकूमते शरअी पर सरकार हो तो उस मोमिन को क़त्ल कर दो। हज जिस पर वाजिब हो और वह इमकान के बाद भी हज न करे तो वह आख़िर वक़्त यहूदी काफिर होकर मरेगा। ज़कात मोमिन का हक़ है जो ज़कात अदा न करे उसको ख़ुदा हरगिज़ माफ न करेगा, जब तक वह मोमिन माफ न करें जिनका हक़ उसने अदा नहीं किया।

ख़ुम्स सादात और इमाम (अ0) का हक़ है और यक़ीनन वाजिब होने के बाद अपने ही माल में हेर–फेर करने वाले भी ग़ासिबे हक़्क़े सादात और ग़ासिबे हक़्क़े इमाम हैं। जिसके माफ करने से अइम्मा ने इनकार फरमा दिया है। जो चीज़ें शरअ ने हराम की हैं उनमें कुछ ऐसी भी हैं जिनके लिए क़ुर्आन ने ख़ुली दलील दी है कि अगर कोई उनका इरतेकाब करे तो चाहे वह मोमिन हो, चाहे वह मुस्लिम है, अहलेबैत का दोस्त हो या अज़ादारे हुसैन (अ0) मगर उसका बदला जहन्नम के सिवा कुछ और नहीं हो सकता। जैसे क़त्ले मोमिन, पाकदामन के साथ ज़िना करने की सज़ा यह है कि संगसार करके मार डाला जाए।

''और इन्हीं सब चीज़ों की तालीम ग़र्ज़े शहादते हुसैन (अ0) थी।''

अगर हमारे सैय्यद व सरदार (अ0) की शहादत सिर्फ इस ग़र्ज़ से होती कि रोने वाला कोई भी हो सीधा जन्नत में जाए। मजलिसे हुसैन में बैठने वाला किसी मज़हब का पाबन्द हो मगर वह नजात का मुस्तहक़ है। अहलेबैत (अ0) का दोस्त चाहे जैसा भी बदकार और इबादात को छोड़ने वाला हो मगर वह नजात पाने वाला है, तो यह कहना बिलकुल ग़लत है कि इमामे हुसैन (अ0) ने अपने नाना का दीन बचाने के लिए कर्बला की अक़्ल को हैरान करने वाली फिदाकारी दुनिया के सामने पेश की। नाना ने वह्दत, रिसालत, मआद, सिफाते इलाही, नमाज़, रोज़ा, हज वग़ैरा हर चीज़ की तालीम दी और बग़ैर इस इल्म व अमल के जन्नत भी मिल जाना मुश्किल बता दिया मगर इमाम हुसैन (अ0) ने मआज़ल्लाह नसरानियों के अक़ीदे की तरह उम्मत के गुनाहों का फिदया बनकर उम्मत को आम इजाज़त दे दी कि कोई अमले ख़ैर न करना, किसी बुराई से न बचना, बस सिर्फ मेरी अज़ादारी करना और जन्नत तुम्हारी है।

नहीं ख़ुदा की क़सम हरगिज़ इमामे हुसैन (अ0) की यह तालीम नहीं थी। उनकी शहादत की ग़र्ज़ सिर्फ हिफाज़ते इस्लाम थी, तालीमाते रसूल (स0) को बाक़ी रखना था, लोगों को गुमराही से बचाकर उसूल व फ़ुरू के सही रास्तों पर लगाना ग़र्ज़े हक़ीक़ी थी।

एक ज़माने में इस हिन्दुस्तान में जो कभी जन्नत निशान कहा जाता था, और अब जहन्नम की तस्वीर है। जहाँ इक़्तेसादी तकलीफों, लूट–मार, आम लोगों की बदअख़्लाक़ियों, क़ानून की ख़िलाफवर्ज़ी, हुक्काम की नाइंसाफियों, हुकूमत

की ग़फ़लतों और बदइन्तिज़ामियों की कड़वाहट, महंगायी की शिद्दत, डकैती, क़त्ल व ग़ारतगरी, इन्सानी ख़ून की बेक़द्री और फिर फ़िरक़ा परस्त जमातों की तबलीग़ी कोशिशों ने हर इंसान की ज़िन्दगी मौत से बदतर बना दी है। अगर हम अपने मज़हब को बचा सकते हैं तो सिर्फ अज़ादारी की बदौलत मगर न इस सूरत से कि नौहे को नौहे की हद से निकाल कर मदह की नज़्म बना दें, और उस पर मातम करें मिसरा यह हो कि अली (अ0) ने ख़ैबर फतह कर लिया और हम उस पर मातम कर रहे हैं। न इस सूरत से हम सिर्फ चाँद के दो टुकड़े होने और सूरज के वापस लौट आने में बारीकियाँ देखें न इस सूरत से कि सोज़ख़्वानी में बड़े–बड़े गवय्यों को मात कर दें। न इस सूरत से कि मिम्बर को तबर्रा बाज़ी से भरकर ख़ुद अपने ही अफ़राद को मज्लिस से उठ जाने पर मजबूर कर दें बल्कि अगर इस दौर में इस्लाम को बचा सकते हैं तो सिर्फ यह बताकर कि हुसैन (अ0) वहदत के कितने ज़बरदस्त मोतक़िद थे, शहादत की मन्ज़िलों की वह अज़ीमुश्शान सख़्तियाँ जिनको दुनिया का कोई इंसान बर्दाश्त न कर सका सिर्फ इस जज़्बे में तय कर गये कि मेरे ख़ालिक़ का यही हुक्म है, हर वह मुसीबत जो इंसान के तहम्मुल से बाहर थी बड़ी हंसी ख़ुशी से सिर्फ इसलिए उठा ली कि मेरा अल्लाह इसमें राज़ी है रसूल की सदाक़त का सुबूत इमामे हुसैन (अ0) ने हर उस इबादत को कर्बला में अदा करके दिया जिनकी तालीम ख़ातमुन्नबिय्यीन (स0) ने दी थी। और जिसको इस मज़लूम और दूसरे मासूमीन (अ0) के अलावा कोई कर्बला के हालात में अदा न कर सका, यानी वाजिबात तो वाजिबात मुसतहब्बात भी तर्क न किये जिनका तज़किरा इशारों किनायों में कर देने से कुछ हज़रात ग़ाली शीओं की नज़रों में काबिले लान–तान हो गये। मज़हबी मामलों में यक्जहती, इत्तेहाद, ख़ुलूस, नीयत, सब्र, जन्नत व नार, हिसाब व किताब, सवाब व सज़ा, हर चीज़ में यक़ीन व ईमान की वह मन्ज़िल इमामे हुसैन (अ0) व अस्हाबे हुसैन (अ0) ने पेश की जिससे ज़्यादा मुस्तहकम ईमान किसी आम इंसान में होना नामुमकिन है।

आज हिन्दुस्तान में यक़ीनन हमारी जान व माल इतने ख़तरे में नहीं है जितना ईमान ख़तरे में है। इस वजह से कि हुकूमत का मसलक लादीनी है तो रिआया में भी ला मज़हबियत का असर आना ज़रूरी है और इस वजह से कि हुकूमत का मसलक ला दीनी सही मगर कभी–कभी अरकाने हुकूमत किसी न किसी मज़हब के जज़्बात से यक़ीनन मुतास्सिर हैं। जिनका इज़्हार कभी न कभी और किसी न किसी अन्दाज़ में हो जाना नागुज़ीर है और इसलिए कि एक तरफ बहाई मिशन दूसरी तरफ शुद्धी के फिदायी मज़हब बदलवा देने पर तैयार हैं। और उसमें ज़रा सा भी झूठ नहीं कि गुड़गाँव के इलाक़े में बंगाल के दूर–दराज़ देहात में सूबे मुम्बई वग़ैरा के गाँवों में बहुत से मुसलमान अपना दीन बदल चुके हैं। और इसलिए कि नाम के मुसलमान और सिर्फ ख़ानदानी शीआ यूँ औरतों की तालीम के फिदाई बन गये हैं कि उनको न ज़िनाकारी आम हो जाने की शर्म है, न बेपर्दगी की ग़ैरत है। न इग़्वा के आम वाक़ेआत देखकर आँख खुलती है, न औरतों के दूसरे मज़हबों के साथ सिविल मैरेज कर लेने से कान पर जूँ रेंगती है, बिलकुल सच है............ ''अलहया मअल ईमान'' (अगर ईमान हो तो शर्म

व हया भी होती है) अगर ईमान नहीं तो शर्म व हया का ख़ुदा हाफिज़, इस क़ाएदे के मुताबिक़ यह कहना नागुज़ीर है कि जो बेहयाई बर्दाश्त करने पर ख़ुशी–ख़ुशी तैयार हैं उनका ईमान यक़ीनन कमज़ोर है। आप याद रखें कि बच्चों की शुरुआती और घरेलू तरबियत व तालीम बहुत ज़ाएद हमारी औरतों की एहसानमन्द है। और इस वजह से यह क़ौल मशहूर है कि ईमानदारी का ज़्यादा बाक़ी रहना औरतों ही के दम से है, इसलिए अगर औरतें ही दुनियावी तालीम हासिल करके दूसरे मज़ाहिब से सिविल मैरेज करके ईमान व इस्लाम से बाहर हो जाएँगी। तो बड़ी हद तक ईमान और उसके साथ अज़ादारी भी ख़त्म हो जाएगी, इसलिए इस ज़माने में अज़ादारी–ए–इमामे हुसैन (अ0) में वह अन्दाज़ इख़्तियार किये जाना लाज़िम हैं जिनसे ग़ैर मज़ाहिब मुतास्सिर हों या न हों लेकिन कम से कम हमारे मज़हब में तालीमाते हुसैनी पर अमल करने और उनके नक़्शे क़दम पर चलने का शौक़ पैदा हो। हमारी औरतों में अहलेबैते हुसैन (अ0) की तरह ईमान, इबादत और इताअते ख़ालिक़ का शौक़ पैदा हो।

हमारी औरतों और मर्दों को समझना चाहिए कि अगर हम पर फाक़ा गुज़र जाए, अगर हम फक़्र की हालत में हों, अगर हम को कहीं मुलाज़मत न मिले, अगर दुनिया हमको ज़लील निगाहों से देखे जो कुछ भी हम पर मुसीबत आए तो हर मुसीबत के बाद भी हमारी तकलीफें असराए अहलेबैत (अ0) की तकलीफों से ज़ाएद कभी बराबर नहीं हो सकतीं। तो क्या इन मुसीबतों पर अल्लाह की पनाह बनी हाशिम की औरतों ने अपना दीन छोड़ दिया? क्या इबादाते इलाही से ग़ाफिल हो गयीं, क्या अपनी बेपर्दगी को सर झुका कर मन्जूर कर लिया

जनाबे सकीना जिनका सिन तीन या सात साल का था। जो उन औरतों की हद में न थीं। मगर दरबारे यज़ीद में रो रहीं थीं। यज़ीद के सवाल पर आपने जवाब दिया कि वह औरत क्यों न रोए जिसके मुँह को ढाँकने को ज़रा सा कपड़ा भी मयस्सर न हो कि ना महरमों से मुँह छिपा सकें। सबक़ लें शाहज़ादी के इन अलफाज़ से वह जो कहते हैं कि शरीअत में मुँह का पर्दा लाज़िम ही नहीं है। अगर ऐसा होता तो हमारी शहज़ादी मुँह खुला होने की शिकायत न करतीं और यज़ीद भी जवाब दे सकता था कि मुँह खुला है तो ग़म क्यों है शरीअत में तो मुँह का पर्दा लाज़िम ही नहीं है।

तो क्या जनाबे सकीना के उन बहते हुए आँसुओं के बाद वह औरतें अहलेबैते (अ0) रसूल (स0) की सच्ची चाहने वाली कही जा सकती हैं जो बेपर्दा घूमें, सिनेमा जाएँ, होटलों में ग़ैरों के साथ गुलछर्रे उड़ाएँ, और आख़िर इग़्वा और सिविल मैरेज के अज़ाब में फंसें, और क्या वह मर्द सच्चे हुसैन के शीआ हो सकते हैं जो उन तमाम बेहयाइयों को ख़ुशी के साथ बर्दाश्त करें, न ख़ुदा को पहचानें, न रसूल (स0) को मानें, न नमाज़ पढ़ें न रोज़ा रखें, न अज़ाब व सवाब की फिक्र करें। और क्या वह दौलतमन्द सच्चे मोमिन कहे जा सकते हैं जो दीन की बुनियादों के हर हिस्से से आज़ाद हों न हज करे, न ख़ुम्स दें, न ज़कात अदा करें और फिर अहलेबैत (अ0) के दोस्तदार होने का दावा करें। □ □ □